International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 12, pp: 228-230 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

आदर्श समाज के सरंचना में श्रीमदभगवदगीता गीता की भूमिका

डॉ रवींद्रनाथ सिंह (प्राचार्य)
सोहागी कॉलेज ऑफ एजुकेशन रीवा म०प्र०

Date of Submission: 25-12-2020 Date of Acceptance: 06-01-2021

पुराकाल से ही भारत की संस्कृति ने सम्पूर्ण मानव जाति के आध्यात्मिक रूपांतरण को ही अपने मूलमंत्र में स्वीकार किया है। विभिन्नता में एकता ही हमारी ससंस्कृति है। प्राचीनकाल से ही हमारी नित्यप्रार्थना में लोक कल्याण की भावना उक्तनिहित है।' **सर्वेभवन्तुसुखिनःसर्वेसन्तुनिरामयाः'** इसी लोक कल्याण के भावना दार्शनिकों विचार कों एवम समाजसुधार कों नेपुर्नजी वितएवम स्थापित किया है। गीता आध्यात्मिक ज्ञान की अमूल्य निधि है तथा उपनिषदों एवम षटदर्शनों का सार स्वरूप है। यह केवल हिन्दू धर्म का नहीं वरन विश्व के मानव मात्र का धर्म दर्शन है, गीता में ऐसे परम्तत्त्व जा वर्णन है, जो सर्वध र्मसमन्वय से परिपूर्ण है। यह भारतीय संस्कृति की आत्मा है।

गीता एक ऐसा दर्शन है जो बिना किसी कठिन क्रियाओं और साधना के गृह स्थधर्म मे रहकर भी दर्शन के प्रयोजन परमार्थ को सुलभ कराता है। भारतीय संसस्कृतवाङ्गमय में ऐसी सर्वप्रथम रचना है, जिसमें धर्म दर्शन और समाजशास्त्र पर त्रिकोणात्मक प्रकाश डाला गया है। गीता के पूर्ववर्ती न्याय, वैशेषिक संख्या योग मीमांसा तथा वेंदान्त भारतीय षडदर्शन जटिल है, जो वर्तमान युग के अनुरूप नही है, आठ कालचक्र के प्रवाह में युग बदलता है साथ ही उपासना पद्धति बदलती है।

गीता में प्राचीन एवम नवीन सभी दर्शनों का समायोजन है। सम्पूर्ण वेदों। कासारउपनिषदहै। और उपनिषदों का सार गीता है, जैसे आम के वृक्ष में जड़ से लेकर पत्तोतकर सविद्य मान रहता है, पर जो रस उसके फल में है, वह अन्य में ऐसे सम्पूर्ण वेदों उपनिषदों शाश्त्रो का सार होने पर। भी जो विलक्षणता गीता में है, वह वेदों शास्त्रों,उ पनिषदों आदि में नहीं ।वेद। भगवान के निःस्वास है और गीता भगवान की वाणी है।

गीतासुगीताकर्तब्या। किमन्यैयःशास्त्रसंग्रहैः।
यास्वयंपडनाभस्यमुखपदवाद्विनिःसृता।।
(म.भ.,भीष्मपर्वअ०४३/१)

गीता में योगी कौ नया योग किसे कहते हैं, इस पर विशेष प्रकाश डाला गया है। कर्म के फल की इच्छा न रखकर जो ब्यक्ति अपने कार्यों को करता है, वही योगी और सन्यासी है। सन्यास और योग एकही है, क्योकि मनुष्य संकल्प त्याग करने पर कर्म में रत होने से सन्यास एवम योग को प्राप्त जर लेता है।

अनाश्रितःकर्मफलंकार्यकरोतियः।
ससन्यासीचयोगीचननिरगिरनचक्रियः।।6/1

गीता में स्पस्ट है कि सन्यास, योग भक्ति में जीवात्मा को अपनी स्वभाविक स्थित जा ज्ञान तदनुसार कर्म करें, आध्यात्मिक शक्तियां मनुष्य में रहती है तो वह सहज स्थिति में रहता है। इस प्रकार जब मनुष्य पूर्णज्ञान में होता है वह समस्त इन्द्रिय तृप्ति क्रियाकलापों को त्याग देता है, अतः यह अभ्यास योगी ही कर सकता है, जो इंद्रियों को भौतिक आसक्ति को रोकते हैं। जब मनुष्य इंद्रियों के तृप्ति के लिए कर्म नही करता अर्थात इंद्रियों को जीत लेता है। इंद्रियों योगैषणा से विचलित नही होता, अतः ऐसी इच्छाओं को त्यागने वाला ब्यक्ति योग रूढ़ कहा जाता है।

वही व्यक्ति आत्म साक्षात्कार को प्राप्त तथा योगी कहलाता है, जो अपने अर्जित ज्ञान तथा अनुभूति से पूर्णतया संतुष्टि रहता है। ऐसा ब्यक्ति अध्यात्म को प्राप्त तथा जितेंद्रिय कहलाता है। वह सभी वस्तुओं को कंकड हो,पत्थर हो,अर्थात सोना हो, एक समान देखता है, ओम तत्व के ज्ञान के बिना कोरा ज्ञान ब्यर्थ होता है।

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 12, pp: 228-230 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

जब मनुष्य समस्त सांसारिक विषयों से मुखमोड़ लेगा तभी चित्त का एकाग्र होना सम्भव है, क्योकि चित्त इधरउधर विषय वासना आदि में चलायमान हो जाता है, जब हमारी कोई कामना इच्छा हीन हीहो, सब त्यागकर देंतो चित्त के अभ्यास से एकाग्र करने से योग की सिद्ध होती है, जैसे दीपक की लौत भीत कचलायमान होती है, जबतक कहीं से वायु उस पर लगे, यदि दीपक पर हवा न लगे, तो वह स्वयं एकाग्र हो जाएगा। ठीक उसी प्रकार एक योगी में कोई कामना है, ममत्व है, तभी तक उसका मन चंचल हो सकता है और जहां मन की इच्छाओं की ममत्व की हवान लगे वह स्वयं एकाग्र हो जाएगा।

अतः इस प्रकार योग साधना करते हुए चित्त शुद्ध ही जाता है, तो योगी को स्वतः उसमें शांति मिल जाती है, वह आत्मत्व को जान लेता है, उसे वो इच्छा विचलित नही कर सकती है। सांसारिक प्राणी तो थोड़े से दुख से विचलित हो जाते हैं, किंतु साधक विचलितन ही होता है, इसे भी सुख ही मानता है उसमें ऐसी आत्म शक्ति आ जाती है।

यदाविनियतंचित्तमात्मन्येवावतीस्ठते।
निःस्पृहःसर्वकामेम्योयुक्तइत्युच्यतेतदा।।6/18

वास्तविक योग वह है, जिसमे दुख स्वरूप सन्सार का अर्थात सांसारिक वासनाओं का योग न हो अर्थात मन तथा इंद्रियों को संयम करके उन्हें सांसारिक सुखलिप्सा से रोकना है, इसमे भी अनिच्छापूर्वक ऐसा किया तो वास्तविक योग नही है, इसलिए मन पर नियंत्रण होना सांसारिक विषयों के प्रतिमन मे अनिच्छा होना चाहिए यही वास्तविक योग है।

गीता में स्पष्ट है कि जब कर्म योग में ज्ञान तथा वैराग्य की वृद्धि होती है तो वह अवस्था ज्ञान योग कहलाती है। जब ज्ञान योग में अनेक भौतिक विधियों से परमात्मा के ध्यान में वृद्धि होने लगती है, तो इसे ही अष्टांग योग कहते हैं तथा इस अष्टांग योग को पार करके ईश्वर के निकट हो जाता है उसे भक्ति योग कहा जाता है। यथार्थ में भक्ति योग ही चरम लक्ष्य है।

संसार मे योगी को तपस्वी, ज्ञानी, कर्मी इन तीनो से बढ़कर माना गया है। योगी की श्रेष्ठता स्पस्ट ही है क्योंकि तपस्चर्या और कर्म कांड योग साधना के लिए प्रथम सीढ़ियां हैं और ज्ञानी माध्यम है, वह इसलिए कि की वह ज्ञान ही पर्याप्त नही है, जबतक स्वयं आत्म सातन करें, पानी को देखने मात्र से ही प्यास नहीं बुझती, प्यास तो पानी पीने से बुझेगी, ऐसे ही केवल ज्ञानी होना पर्याप्त नही है, जबतक स्वयं उसका व्यवहार न करें, जो ज्ञान का व्यवहार करेगा वही ज्ञानी योगी है अतः योगी की सत्तासर्वोपरि है, जो सिद्धि प्राप्त उसी में सन्तुष्ट न होकर इस अनन्त ज्ञान की निरन्तर खीज करना ही साधक की श्रेष्ठता है। योग की सर्वोच्चदशा केवल भक्ति योग से ही प्राप्त किया जा सकती है, जिसकी पुष्टि वैदिक साहित्य में कई गयी है।

यस्यदेवेपरामक्तिर्यथादेवेतथागुरौ।
तस्यैतेकथिताहार्थःप्रकाषतेमहात्मनः।।
श्वेताश्वतरउपनिषद 6/23

अतः भगवान की सेवा जो इस जीवन मे या अगले जीवन के भौतिक लाभ की इच्छा रहित करता है, वह मनुष्य अपने न परमेश्वर में लींन कर योगावस्था को प्राप्त कर लेता है। नैष्कर्म्य काय ही प्रयोजन है। अतः निष्कामकर्म, इंद्रियों को वश में करना, योग लिप्सा से विरक्त हो ईश्वर में साधकरूप में सर्वस्य समर्पण करना तथा सांसारिक विषादों से मुक्त होकर निर्मलमन से परमात्मा में एकाकार होना सर्वोच्च योगावस्था होती है।

गीता के ही माध्यम से ही व्यक्ति को परमतत्व में विलीन होने का ज्ञान प्राप्त होता है। भगवदगीता में परमसत्य की अनुभूति तीन रूप में होती है, निर्गुण ब्रम्ह, अंतर्यामी परमात्मा तथा भगवान श्रीकृष्ण गीता में भगवान, भौतिक प्रकृति, जीवत था निष्काम कर्म की ब्याख्या की गई है।

परम सत्य की सभी धारणाएं निराकार ब्रम्हअंतर्यामी परमात्मा है। जीव अपने मूलरूप में शुद्ध आत्मा है, वह परमात्मा का एक परमाणु मात्र है। जो साधक के रूप में उपस्थित है। अतः मनुष्य को साधक के रूप में निष्काम कर्म, भोग से विरक्त होकर इंद्रियों को वश में कर योग की उच्चावस्था को प्राप्त करना चाहिए, यही गीता का उदेश्य है।

अनेकचित्तविभांतामोहजालसमाकृताः।
प्रसक्ताःलाभभोगेषुपतन्तिनरकेएशचौ।।

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 12, pp: 228-230 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

नरक के विषय मे गीता में स्पष्ट है कि अनेक प्रकार से भ्रमितचित्त वाले मोह में फंसे आसुरी स्वभाव वाकई मनुष्य नरक में जाते हैं। नरक के विषय में श्री योगेश्वर कहते हैं कि मुझसे द्वेष रखने वाले नराधमोंलो मैं बारम्बार आसुरी योनियों में गिराता हूँ। अजस्रआसुरी योनियों में गिराता हूँ यही नरक है। काम, क्रोध और लोभ नरक के द्वार हैं, जिसमे आसुरी सम्पद गठित होती है।

पाप के विषय मे गीता में स्पष्ट है कि रजोगुण ने उतपन्न काम और क्रोध भोगों से कभी तृप्तन होने वाले महान पापी होते हैं, अतः पाप का उद्गम काम और वासनाएं हैं। इन्द्रियां मन और बुद्धि इसके वास स्थान होते हैं। योगेश्वर के अनुसार इंद्रियों, मन और बुद्धि की शुद्धिजप, यज्ञ तथा ध्यान से तथा निष्काम कर्म से ही सम्भव है।

गीता सार्व भौम है। धर्मग्रंथों के नाम से प्रचलित विश्व के समस्त धर्मग्रंथों में गीता जास्थान अद्वितीय है। गीता वह कसौटी है, जिस पर प्रत्येक धर्मग्रंथ में अनुस्यूत सत्य अनावृत्त हो उठता है, परस्पर विरोधी कथनों का समावेश निकल आता है। प्रत्येक धर्मग्रंथ में कर्म कांडों का बाहुल्य है तथा कर्मकांडों की इसी परम्परा को मानव धर्म समझने लगता है। जीवन निर्वाह की कला के लिए निर्मित पूजा पद्धत्तियों में देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन स्वभाविक है। गीता इन क्षणिक व्यस्थाओं से उपर उठकर आत्मिक पूर्णता मे प्रतिष्टित करने का क्रियात्मक अनुशीलन है, इसका प्रत्येक अंश आंतरिक आराधना की मांग करता है।अतःगीतामेंकर्म, धर्म,वर्ण,ज्ञान आदि पर विशेषबल दिया गया है, गीता एक ऐसा श्रेष्ठ धर्म ग्रंथ हैं, जो मानव को स्वर्गयानरक के केंद्र में फंसाकर नही छोड़ता, बल्कि उसे अमरत्व की उपलब्धि कराता हैं, जिसके पश्चात जन्म-मरण का बंधन समाप्त हो जाता है।

संदर्भग्रंथ

1. भगवतगीता-६/१
2. भगवतगीता-६/३
3. भगवतगीता-६/१८
4. भक्तिर सामृत सिंधु-२/२३४
5. श्वेता श्वतर उपनिषद-६/२३
6. यथार्थ गीता-६/४६